संपादकीय

प्रधानमंत्री मोदी ने 'मन की बात' रेड़ियो प्रसारण के माध्यम से किसानों से बात की और जो संशोधन के बारे में शंकाऐं व्यक्त की जा रही थी उन्हें दूर किया। कुछ संशोधन अच्छे हैं लेकिन पुराने बिल के अन्य विवादास्पद मुद्दों का समाधान नहीं हुआ जबकि नऐ मुद्दे आ चुके हैं। हम किसान भूमि अधिग्रहण बिल में सहमति के खंड से अच्छा महसूस कर रहे हैं। किंतु यह संदेहजनक है कि क्या यह संशोधन आंदोलन में किसानों को एक रख पाऐंगे। भूमि अधिग्रहण विषय की पूरी दिल्ली और मीडिया चैनलों में गूँज है और देश भर के किसान इसके प्रति चिंतित हैं। यह एक कठिन वर्ष है क्योंकि किसानों ने पिछली फसल भी कम मूल्य पर बेची थी जैसे धान और नारियल 25 प्रतिशत कम मूल्य पर, दूसरी तरफ किसानों को बुआई के मौसम में खाद के बौरों पर प्रिंट मूल्य से 40 प्रतिशत अधिक मूल्य देना पड़ा था। नई फसल की कटाई से पहले ही बेमौसम वर्षा और औलों ने फसल बर्बाद कर दी। यह तो किसान की वर्तमान चिंता है लेकिन इसके अतिरिक्त भविष्य में अधिग्रहण और पर्यावरण की आशंका भी सता रही है। इसके अतिरिक्त भारत की 50 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में रहती है और उन्हें भूमि अधिग्रहण की परवाह नहीं है जबकि बाकि 50 प्रतिशत लोग जो गाँव रहते हैं उनमें से अधिकतम महसूस करते हैं कि उनकी भूमि का अधिग्रहण नहीं होगा क्योंकि उनकी भूमि का वाणिज्यिक उपयोग नहीं हो सकता।

भारतीय जनता पार्टी और काँग्रेस आई दोनों ही अपने आस–पास के गलत सलाहकारों के द्वारा खुश किऐ जा रहे हैं। काँग्रेस हमेशा अपने नेताओं और बौद्धिक लोगों द्वारा घिरी रही जिस कारण वास्तविक स्थिति से परे रही। जबकि भारतीय जनता पार्टी उद्योगपतियों की अधिक सुन रही है। नई–नई अवसरवादी राजनैतक पार्टीयाँ चुनाव में फायदा उठाने के लिऐ इस विषय का उपयोग कर रही हैं। जिन राजनेताओं ने कभी खैती नहीं की वह अपने राजनीतिक लाभ के लिऐ किसानों का भाग्य संवारने में लगे हैं। इस कारण हम कहीं सफल नहीं हो पाते। विश्वास में इतनी कमी आ चुकी है कि किसान आंदोलन करने वाले राजनैतिक दलों पर भरोसा नहीं करते। यूपीऐ सरकार ने फायदा उठाया और अब भारतीय जनता पार्टी की बारी है जो अर्थशास्त्रीयों की उलझी हुई थ्योरी या किसानों के आम लाभ के प्रति कुछ सोच सके।

विशेष आर्थिक क्षेत्र से उम्मीद है कि परिवर्तन होगा और विकास के साथ–साथ नौकरियाँ भी मिलेंगी। यह एक बुरे सपने से अधिक नहीं है जो अभी तक दर्द दे रहा है। पुरानी यादों से किसान आहत थे और नया कानून बनने से भी भयभीत हैं। किसानों की जमीन लेने से अतीत में सबसे ज्यादा लाभ राज्य सरकारों ने कमाया जिनमें हरियाणा और उत्तर–प्रदेश हैं जिन्होंने भूमि पर कलौनियाँ बनवा दी। जैसी आम धारणा है की प्राईवेट लोगों ने लाभ कमाया वैसा नहीं है। किसानों में असंतोष बढ़ रहा है किंतु अभी इतना नहीं बढ़ा की विस्फोट हो जाऐ।

डॉ० अभिजीत सेन

मैं उन मुद्दों को नहीं उठाऊँगा जिन पर सुरजीत एस. भल्ला ने विचार वयक्त किऐ हैं – मैं न तो उन मुद्दों से सहमत हूँ न ही असहमत। किंतु उनके कुछ विचारों पर मैं संक्षेप में कहना चाहूँगा। सुरजीत ने कहा कि कृषि बाजार को खुला छोड़ दिया जाऐ और उस पर किसी प्रकार की रोक न लगाई जाऐ। अन्य क्षेत्र की तरह इसे भी कोई आर्थिक सहायता न दी जाऐ। उन्होंने यह भी कहा कि कृषि को भी अन्य क्षेत्र की तरह माना जाऐ और उस पर भी टैक्स लगाया जाना चाहिऐ और उसे कोई अत्यधिक लाभ न दिया जाऐ न ही अधिक टैक्स लगाया जाऐ। इन सभी बातों को उस संदर्भ में देखने की आवश्यकता है जो वार्ता के आरंभ में कहा गया कि भारत में सरकार किसानों को कहती है कि वे ऐसी फसलें उगाऐं, वहां उगाऐं और इन मूल्यों पर अपनी फसलों की बिक्री करें। लेकिन यह सत्य नहीं है। सरकार केवल इतना कहती है कि यदि किसान अपनी फसल नहीं बेच पाता तो वह बेचेगी लेकिन पहले से निर्धारित मूल्य पर। इसका अर्थ यह नहीं कि किसान अपनी फसल को बाजार में अधिक मुल्य पर नहीं बेच सकता। सरकार यह निर्णय भी नहीं करती कि किसान को कहां खेती करनी चाहिऐ, क्या फसल उगानी चाहिऐ। इस प्रकार की बातों को बहुत पीछे छोड़ दिया गया है। यदि कोई आज के समय में भी 1960 के दशक की बात करता है तो उसका कोई हल नहीं है। 1960 में और आज के समय में बहुत परिवर्तन आ चुका है, उस समय की रोक अथवा आदेश लुप्त हो चुके हैं। विश्व में क्या कोई ऐसा देश है जो मूल्य उतार चढ़ाव के दौरान अपने किसानों की रक्षा नहीं करता ?

विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश हो। कुछ छोटे देशों को छोड़कर विश्व के लगभग सभी देश अपने किसानों को मूल्य स्थिरता प्रदान करते हैं। जहां तक आर्थिक सहायता की बात है मैं सुरजीत से सहतम हूँ कि हमारी कृषि पर आर्थिक सहायता अधिक है। आर्थिक सहायता कम की जानी चाहिऐ और मैं बताना चाहूँगा क्यों। लेकिन यदि आप हमारी सब्सिड़ी की यूरोप, अमेरिका या जापान में दी जा रही सब्सिड़ी से तुलना करें तो आप को पता चलेगा कि वह उनकी सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में 10 प्रतिशत भी नहीं है। इस प्रकार न तो हम वर्ष 1960 में हैं न ही अन्य देश अपने किसानों को कम सब्सिड़ी दे रहे हैं और आप चाहते हैं कि हमारे किसान विश्व बाजार के मुकाबले में आऐं। यह दोहराना ही होगा जो हम वर्ष 1950 से दोहराते आ रहे हैं कि हम कृषि प्रधान देश में रहते हैं। लेकिन यह भी सत्य है कि हमें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जैसे हमारी भूमि के संसाधन (भूमि की प्रकृति और उपयोग में परिवर्तन), जल उपल्बधता (कमी और सिंचाई), जनसंख्या, इन क्षेत्रों में हम अन्य देशों से बिलकुल अलग हैं केवल चीन जैसे देश को छोड़कर। प्राकृतिक रूप से भारत कृषि क्षेत्र में मुकाबला नहीं कर सकता है – हमारे प्राकृतिक संसाधन ऐसे नहीं हैं कि हमारा देश मुकाबले के लिऐ कृषि फस्लों को उगा सके। आज हम उस स्थिति में हैं कि हमारे देश की 50 प्रतिशत जनसंख्या कृषि क्षेत्र में है। एक मूल समस्या यह है कि हम विश्व बाजार में प्रतिस्पर्धा करें या अपनी आधी जनसंख्या की आजीविका पर ध्यान दें। यदि हम प्रतिस्पर्धा करते हैं तो यह निशचित नहीं की हमारे किसान मुकाबले में टिकेंगे और उन्हें लाभ मिलेगा या हानि होगी। उन्हें गंभीर परिणामों का भी सामना करना पड़ सकता है। इस प्रकार परिणामों के प्रति कुछ लोग आशावादी और कुछ निराशावादी हैं। मैं सुरजीत से इन मुद्दों पर सहमत हूँ कि हमारे देश के राजनैतिक दलों में निराशा विद्यमान है क्योंकि वे डरते हैं कि यह एक इेसा युद्ध है जिसमें अधिकतम लोगों को हानि ही होगी। सुरजीत जी की यह बात अच्छी लगी की हमें धीरे–धीरे या जल्दी लोगों को कृषि क्षेत्र से बाहर लाना चाहिऐ और कृषि पर निर्भर लोगों की संख्या में कमी करनी चाहिऐ। उन्हें कृषि को छोड़कर अन्य क्षेत्र में नौकरी और आय के साधन जुटाने चाहिऐं। यह विकास की सामान्य प्रकिया है। इसलिऐ कृषि क्षेत्र से गैर कृषि क्षेत्र में संसाधन लगाने की आवश्यकता है। सबसे महत्वपूर्ण उपाय यह है कि संसाधनों को गैर कृषि कार्यों में लगाकर लोगों को रोजगार दिया जाऐ। किंतु यह तभी हो सकता है जब अन्य संसाधन भी प्रयाप्त मात्रा में उपलब्ध हों जैसे भूमि, जल आदि। आप कुछ भी उगाना चाहें या निर्माण करना चाहें उसके लिऐ भूमि और जल

की तो आवश्यकता होगी चाहे कम मात्रा में। किंतु ऐसा नहीं की भूमि और पानी चाहिऐ ही न हों। हमें इस पर सहमति बनानी होगी की यह सब केसे किया जाऐ, यहि सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। मैं सुरजीत के इस मुद्दे से सहमत हूँ कि हमने भारत में पहले इस प्रश्न पर इतनी गंभीरता से कभी विचार नहीं किया जैसा अब कर रहे हैं। इसमें भूमि अधिग्रहण (संशोधन) जैसे विषय शामिल हैं। इन विषयों पर विचार विमर्श होते रहना चाहिऐ। यह सच है कि कृषि क्षे से अन्य क्षे में संसाधन लगाने होंगे लेकिन यह कैसे किया जाऐ। हमाने देश में जब वाद–विवाद आरंभ होता है तो यह कटुतापूर्व बन जाता है और आरोप एवंम प्रति आरोप लगाऐ जाते हैं लेकिन अंत में कुछ सकारात्मक परिणाम भी निकलता है।

किंतु हमें कुछ क्षेत्रों में सावधान रहना चाहिऐ। यदि हम यूपीऐ सरकार के पिछले 10 वर्षों में देखें तो यह धारणा बनी थी की भारतीय कृषि की इस अवधि में दुर्दशा हो गई थी। लेकिन सच यह है कि पिछले कई दशकों में कोई भी ऐसा दशक नहीं था जिसमें इस दशक की तुलना में कृषि विकास हुआ हो या कृषि निर्यात बढ़ा हो। सबसे महत्वपूर्ण यह था कि अन्य वस्तुओं के मूल्यों के अनुपात में ही कृषि जिंसों के मूल्य भी बढ़े थे। इस अवधि में कृषि क्षेत्र में जितनी आय बढ़ी उतनी किसी अन्य क्षेत्र में नहीं। इन 10 वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद कि वृद्धि अत्यधिक थी लेकिन कृषि के भाग को नकारा नहीं जा सकता। क्या यह जारी रहेगा – यदि हाँ तो कैसे और क्यों और यदि नहीं तो क्यों और कैसे नहीं ? हमें व्यापक संदर्भ में इन प्रश्नों की जाँच करने की आवश्यकता है कि हम कैसे कृषि क्षेत्र से अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में धीरे–धीरे संसाधन जुटाऐं।

उन 10 वर्षों (2004 – 2014) में क्या भिन्न था। यह भिन्नता यूपीऐ सरकार या ऐनडीऐ सरकार के सदंर्भ में नहीं है बल्कि वर्ष 2004 से पहले और वर्ष 2014 के बाद के बारे में है। यदि 1995 से 2014 की अवधि देखें तो भारत में कृषि की बदत्तर स्थिति थी। कृषि वृद्धि दर लगभग 2 प्रतिशत वार्षिक तक निचे चली गई थी। कृषि का कारोबार मंदा पड़ चुका था और कृषि क्षेत्र में संसाधन नहीं जुट रहे थे (अब कि तुलना में उस समय अधिकतम लोगों ने खेती करना बंद कर दिया था। इसके पश्चात सुधार हुऐ। 1990 के मध्य से 2005 के बीच में ऐसा क्या नहीं हुआ था जो कि इसके बाद के 10 वर्षों में वैसा हो पाया और हम अगले 10 वर्षों में क्या देखेंगे और इन दो अवधियों में से हम किसको अपनाना चाहेंगे।

वर्ष 1995 से वर्ष 2004 की अवधि में दो या तीन महत्वपूर्ण घटनाऐं हुई। पहली, पूरे विश्व में कृषि जिन्सों के अंतर्राष्ट्रीय बाजार भाव मंदे रहे। इसके विपरीत 2005 से 2014 तक की अवधि में कृषि के अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों में सुधार हुआ। इन दोनों अवधियों में हमारे मूल्य कुछ सीमा तक वैसे ही रहे जैसे पूरे संसार में व्याप्त थे। क्या यह जारी रहेगा ? अगले 10 वर्षों में क्या विश्व में कृषि मूल्य बढ़ते रहेंगे ? ऐसा प्रतीत नहीं होता, इनमें गिरावट आरंभ हो चुकी है। वास्तव में विश्व मूल्यों में भारत की तुलना में तेजी से गिरावट आ रही है। तेल के मूल्य गिरने से आशंका है कि लगभग सभी जिंसों के मूल्य कम हो जाऐंगे। अतः कृषि पर आर्थिक सहायता न देने के विषय को विश्व बाजार के संदर्भ में देखने की आवश्यकता है। क्योंकि, जिंसों के भाव गिर रहे हैं और पर्याप्त मात्रा में गिरते हैं। 1995 से 2005 की अवधि में एक अन्य महत्वपूर्ण स्थिति यह थी की कृषि क्षेत्र में सार्वजनिक व्यय काफी बढ़ा। कृषि राज्य सरकारों का विषय है, न की केन्द्रीय सरकार का। उस अवधि में राज्य सरकारों ने कृषि पर बहुत कम निवेश किया। इस कारण कृषि निवेश प्रभावित हुआ और इसी से कृषि क्षेत्र पर विपरीत प्रभाव पड़ा। अगले 10 वर्षों में केन्द्र सरकार ने कृषि क्षेत्र में अधिक व्यय किया लेकिन सबसे महत्वपूर्ण सरकार ने पहली बार यह सुनिशचित करने का प्रयास किया की राज्य कृषि पर अधिक मात्रा में व्यय करें। एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम जिसने इस क्षेत्र को प्रोत्साहित किया वह था 'राष्ट्रीय किसान विकास योजना'। इस क्षेत्र में निवेश की गई मामूली राशि (कम करने से पहले इसकी अधिकत्म मात्रा लगभग रू. 11,000 करोड़ थी) से अधिक केन्द्र सरकार ने उसी अनुपात में राज्यों को राशि प्रदान की जैसी उन्होंने पिछले वर्ष कृषि क्षेत्र में लगाई थी और उन

राज्यों को राशि नहीं दी गई जिन्होंने पिछले वर्ष से कम राशि कृषि क्षेत्र में लगाई। इससे यह सुनिश्चित हो गया कि केन्द्र द्वारा कृषि क्षेत्र के लिऐ दिया गया प्रत्येक रूपये पर देश में कृषि क्षेत्र के लिऐ 2 रू. का सार्वजनिक व्यय हुआ क्योंकि राज्यों ने भी केन्द्र से राशि लेने के लिऐ कृषि क्षेत्र में अधिक निवेश किया।

इस प्रकार कृषि में अधिक राशि आ रही थी। राष्ट्रीय किसान विकास योजना का पशुपालन क्षेत्र पर अधिक प्रभाव पड़ा। राज्यों ने पशुपालन पर अधिक व्यय किया। कृषि में इस प्रकार से राशि खर्च करने के लिऐ कुछ प्रोत्साहन राशि और अनुशासन आवश्यक होता है, तथा राष्ट्रीय किसान विकास योजना से यह सुनिश्चित हो पाया। लेकिन इस बजट में इस योजना को समाप्त कर दिया गया है, इसके लिऐ में चिंतित हूँ। राज्यों को वित्त आयोग की सिफारिशों पर अधिक राशि मिल चुकी है। 4 या 5 हजार करोड़ रू. की कटौती से कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता जो राज्यों को वित्त आयोग के विकेन्द्रीयकरण से मिली है क्योंकि वह राशि लगभग 1,50,000 करोड़ रू. की है। अब राज्यों को कृषि पर व्यय करने से कोई राशि नहीं मिलेगी और यही मेरी चिंता का विषय है। क्या अब राज्य प्रयाप्त मात्रा में कृषि क्षेत्र में व्यय करेंगे ?

इसके पश्चात कृषि के मूल पहलुओं को देखने की आवश्यकता है। क्या हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग करने की व्यवस्था कर रहे हैं ? क्या हम नई तकनीकी अपनाने जा रहे हैं और किसानों को भी वह तकनीक सीखाने के लिऐ प्रयास कर रहे हैं ?

इस वर्ष के बजट में कृषि क्षेत्र के लिऐ सबसे महत्वपूर्ण यह हुआ है कि केन्द्र सरकार ने वित्तीय संसाधनों को एक तिहाई भाग राज्यों को वापिस दे दिया है जिनका अभी तक राज्यों में वितरण होता था। यह सही कदम है क्योंकि कृषि राज्य सरकारों का विषय है और राज्य सरकारें ही अपने राज्य की कृषि के लिऐ जिम्मेवार भी हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि केन्द्र सरकार, वैज्ञानिकों, समाज को ऐसा क्या करना चाहिऐ की यह सुनिश्चित हो सके की राज्य सरकारें कृषि क्षेत्र के प्रति अपने दायित्वों को पूरा करें। आज की वार्तालाप का उद्देश्य यह है कि कृषि क्षेत्र से संसाधन कैसे हटाऐ जाऐं, इसके साथ राज्य सरकारों को भी कैसे जिम्मेवार बनाया जाऐ की वह कृषि क्षेत्र के विकास के प्रति गंभीर हों।

जब सरकार ने योजना आयोग को समाप्त किया तो कुछ लोग (विशेषकर सुरजीत जैसे इस निकाय के आलोचक) बहुत खुश हुऐ। योजना आयोग का प्रश्न नहीं है, प्रश्न यह है कि राज्य सरकारों को कृषि के प्रति कैसे जिम्मेवार बनाया जा सके। हमें देखना होगा की निति आयोग या प्रधानमंत्री कार्यालय इस कार्य को करेंगे। इससे पहले योजना आयोग यह कार्य देख रहा था, कृषि राज्य सरकारों को विषय होने के कारण केन्द्रीय सरकार को राज्यों के कृषि विभागों से वार्ता करनी होगी न की केन्द्रीय कृषि मंत्रालय के माध्यम से।

अंत में मैं कहना चाहूँगा की कृषि क्षेत्र से संसाधन वापिस लेना बहुत महत्वपूर्ण है और उन्हें अर्थ व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विकास में लगाना होगा। लेकिन जो संसाधन कृषि क्षेत्र के लिऐ हैं उनके प्रति भी सरकार को अपनी जिम्मेवारी निभानी होगी।

कृषि में उन्नति – अजय वीर जाखड़

भारत कृषक समाज लंबे समय से बेहतर समन्वय के लिऐ कृषि मंत्रालय को जल संसाधन और ग्रामीण विकास मंत्रालयों के साथ मिलाने के लिऐ कह रहा है। एक कारगर उपाय के रूप में सहकारी संघीय ढ़ांचे को मजबूत बनाने के लिऐ यह सुझाव महत्वपूर्ण हो सकता है। पंचायती राज और खाद्य प्रसंसाधन मंत्रालय भी एक हो सकते हैं जिसमें कृषि मंत्रालय शामिल नहीं होगा और इन दोनों के मिलने से राज्यों को भरपूर सहायता मिलने की संभावना है जैसा की संविधान में भी निर्धारित किया गया था। किंतु हमें ध्यान रखना होगा कि हम क्या चाहते हैं।

इस वर्ष हमें संसाधनों के विकेन्द्रीयकरण क्षेत्र में एक अच्छा बजट देखने को मिला है लेकिन इसके मिले–जुले परिणाम हो सकते हैं। राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रायोजित एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम की राशि को आधा कर दिया गया है। यह योजना गंभीरता से तैयार की गई थी जिसके अंतर्गत यदि कोई राज्य सरकार पिछले वर्ष की तुलना में कृषि क्षेत्र में अधिक व्यय करती थी तो इस योजना कि राशि भी उसी अनुपात में बढ़ जाती थी। यदि राज्य सरकार कम व्यय करती थी तो उसे केन्द्र सरकार से कोई राशि प्राप्त नहीं होती थी। इससे कृषि क्षेत्र में राज्य सरकार के निवेश की गारंटी और प्रोत्साहन मिलता था। राज्यों के लिऐ जाना जाता है कि वे केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं की राशि को चुनावों में भुनाने के लिऐ अन्य योजनाओं में लगा देते थे। बहुत सी राज्य सरकारें अपने कर्मचारियों को समय पर वेतन और भत्ते नहीं दे पा रही हैं। मुझे ड़र है कि राज्यों को आबंटित राशि का उपयोग कहीं ओर न हो जाऐ तथा 'कृषि विस्तार सेवाऐं' बुरी तरह से प्रभावित हों। राज्य सरकारों द्वारा राष्ट्रीय किसान विकास योजना निधि का बड़ा भाग पशुपालन क्षेत्र के लिऐ उपयोग किया लेकिन देशी पशुओं का दूग्ध उत्पादन लगभग 2.5 लीटर प्रति दिन के आस पास ही रहा। पशुओं को स्वस्थ बनाने का एक राष्ट्रीय कार्यक्रम आरंभ करने से दूध का उत्पादन 20 प्रतिशत तक बड़ सकता है। किंतु इसके लिऐ केन्द्रीय समन्वय की आवश्यकता होगी। क्या नीति आयोग इसके लिऐ कोई वास्तविक परामर्श या आदेश जारी करेगा अथवा उसके पास इतनी शक्ति और संसाधन हैं कि वह राज्य सरकार की नीतियों को प्रभावित करे, यह समय ही बताऐगा।

इस बजट में दीर्घकालिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है न की लघुकालिक वृद्धि प्राप्ती का। वित्त मंत्री ने जान लिया है कि कृषि आय कम हो रही है और भूमि जांच कॉर्ड योजना और प्रधानमंत्री ग्राम सिंचाई योजना की घोषणा की। यदि माईक्रो सिंचाई के क्षेत्र पर भी कुछ ध्यान दिया जाता तो यह बेहतर होता। ऐसा होने से कम राशि और कम लागत पर किसानों को अन्य सुविधाऐं मिल सकती थी। जैविक खेती के लक्ष्य की प्राप्ति को भी वित्त आबंटित नहीं किया गया है।

विपणन के संबंध में, एक राष्ट्रीय कृषि मार्किट बनाने से किसानों और उपभोगताओं दोनों को लाभ मिलेगा। वित्त मंत्री को राज्यों को विश्वास दिलाना होगा की एकीकृत मार्केट से कितना लाभ हो सकता है। राज्य सरकारें इससे सहमत हो जाऐंगी यदि केन्द्रीय सरकार न्यूनतम 5 वर्ष के लिऐ राजस्व क्षति की पूर्ति करे। फॉवर्ड़ मार्केट आयोग को सेबी के साथ मिलाने का प्रस्ताव निश्चित रूप से जिंसों के वायदा कारोबार को मजबूत करेगा, इसमें पारदर्शिता आऐगी और सट्टेबाजी कम होगी।

बजट में प्रस्ताव है कि किसानों के द्वारा सहकारी समिति या सहकारी समितियों द्वारा किसी सहकारी बैंक में कराई गई सावधि जमा पर स्रोत से कर (टी.डी.ऐस.) काटा जाऐ। यह स्पष्ट नहीं है कि प्राथमिक कृषि ऋण समिति या सहकारी समितियों (सहकारी बैंकों को छोड़कर) की आय पर टैक्स काटा जाऐ जबकि उन्हें आयकर

अधिनियम 1961 की धारा 80 (पी) के अंतर्गत छूट मिली हुई है। इसी बीच में सार्वजनिक बैंक क्षेत्र की प्रशंसा करना भी अतिशयोक्ती होगी। कृषि ऋण का वितरण का जिस प्रकार से होता है उसकी आलोचना की जानी चाहिऐ। कृषि ऋण बढ़ाकर 8.5 लाख करोड़ कर दिया गया है किंतु इसमें कोई पारदर्शिता नहीं है कि यह उदारता किस तक पहुँच रही है। हाल ही में असमय वर्षा के कारण अंगूर, अनार और सब्जियों तथा मोटे अनाज को काफी क्षति पहुँची है, यह सरकार को जगाने की घंटी है। सरकार को अपनी तरफ से कुछ प्रीमियम देकर फसल बीमा योजना आरंभ करनी चाहिऐ।

पहले हुऐ वार्तालाप में यह कहा गया था कि यह बजट विभिन्न समस्याओं के निपटान का अंतिम अवसर है और बाद में कुछ अर्थशास्त्रीयों ने इसे वर्ष 1991 के बाद का सर्वोत्तम बजट कहा। हम भारत कृषक समाज इससे सहमत नहीं हैं और प्रत्येक अवसर गंवाने के बाद समस्याऐं न केवल अति कठिन बल्कि अधिक महंगी होती जाऐंगी। किसानों को खुशहाल बनाने के लिऐ ग्रामीण युवाओं के लिऐ रोजगार जुटाने की आवश्यकता है। यदि यह बजट अपने वादे को पूरा करके नौकरियाँ जुटाता है तो यह वही प्रसन्नता का क्षण होगा जिसकी हम लंबे समय से प्रतिक्षा कर रहे हैं। किंतु केवल यही नहीं मानना होगा की रोजगार तभी मिल सकता है जब उद्योगपतियों को किसानों की सहमति के बिना उनकी जमीन लेने की अनुमति दे दी जाऐ।

परिवर्तित हो रहे संघीय ढ़ाँचे में हमारे लिऐ यह और भी कठिन हो जाऐगा की हम एक विशेष कृषि नीति की वकालत कर सकें क्योंकि अब कृषि नीति विभिन्न राज्यों की राजधानीयों तक फैल चुकी हैं। राज्यों को भी जल्दी ही आभास हो जाऐगा की वे किसानों के कष्टों के लिऐ केन्द्रीय सरकार को दोषि ठहराकर बच नहीं सकते। हम केवल आशा कर सकते हैं कि राज्य इस नीधि का पूरी ईमानदारी से उपयोग करेंगे। बजट की आलोचना करने के लिऐ किसानों की संस्थाऐं भी एकजुट हो रही हैं जैसे भारतीय किसान संघ (आर.ऐस.ऐस. से सबध) और अखिल भारतीय किसान सभा (सी.पी.ऐम. से सबध)। हमें हो रही प्रगति को नजरअंदाज नहीं करना चाहिऐ किंतु यह सोचना चाहिऐ की इसमें कितनी उन्नति और हो सकती थी यदि किसानों की सुनी जाती। परिवर्तन करने के पश्चात विलम्ब नहीं होता है।